छोटी-सी आशा

प्रमोद

इस अंक से हम एक नए स्तम्भ- रेखाचित्र- की शुरुआत कर रहे हैं। ये किसी स्कूल के अनुभव या अवलोकन पर आधारित हो सकता है जो कि स्कूल की स्थिति, वातावरण, स्कूल की दिनचर्या एवं स्कूल में चल रहे कार्य पर केन्द्रित हो। प्रमोद का यह रेखाचित्र निराश करने वाली स्कूली हकीकत में एक कर्मठ शिक्षक की तस्वीर प्रस्तुत करता है जो सेवानिवृत्ति के भी बच्चों के साथ काम करने में जुटा हुआ है।

लेखक परिचय : स्वयं सेवी संगठनों में शिक्षक प्रशिक्षण, सामग्री निर्माण आदि कार्यों से जुड़े रहने के बाद आजकल स्वतंत्र रूप से बतौर शिक्षा सलाहकार काम कर रहे हैं। बच्चों के लिए कविता एवं कहानी विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित हुई हैं।

सम्पर्क : 27 ए, एकतापथ, श्री जी नगर, सुरभि लोहा उद्योग के सामने, दुर्गापुरा, जयपुर-302018

सुबह के लगभग 9.30 बजे जब मैं स्कूल पहुंचा, दो-चार बच्चे स्कूल के आंगन में घूम रहे थे और कुछ अपने-अपने घरों से बस्ते टांगे चले आ रहे थे। श्रीमती सीता देवी एवं श्रीमती कला देवी नाम की दो महिलाएं बच्चों को प्रार्थना करने के लिए इकट्ठा करने में लगी थीं। दोनों की उम्र लगभग 55-60 वर्ष रही होगी।पता चला कि दोनों ही शिक्षका नहीं थीं। उनमें से एक 'मिड डे मील' पकाने का काम करती थी और दूसरी उनकी सहायिका थी।

प्रार्थना करने के लिए लड़के और लड़कियां अलग-अलग पंक्ति बनाकर खड़े हुए, दो लड़कियों ने सामने खड़े होकर प्रार्थना- ''वह शक्ति हमें दो दयानिधी...'' करवाई। प्रार्थना के बाद बच्चों ने- ''सारे जहां से अच्छा हिन्दोस्तां हमारा...'' गीत गाया और इसके बाद कुछ नारे लगाए, जय बोली- ''भारत की स्वतंत्रता अमर रहे, भारत माता की जय।'' बच्चों का आना प्रार्थना के दौरान और बाद तक जारी रहा।

इसी दृश्य में एक बुजुर्ग शिक्षक थे जो सेवानिवृत्त हो चुके थे और इसके बाद भी नियमित स्कूल आते थे, बच्चों को पढ़ाते थे। इसकी एवज में उन्हें कोई पैसा या तनख्वा नहीं मिलती थी। उनका कहना था- ''बस इस स्कूल से, इस जगह से प्यार है इसलिए यहां आ जाता हूं और बच्चों को पढ़ा लेता हूं।''

तीन कक्षाओं (कक्षा 6, 7, 8) पर एक शिक्षिका नियुक्त थीं और वे स्कूल शुरू होने के समय से एक घण्टा देरी से स्कूल पहुंचीं। मैंने इस स्कूल में दिनभर कक्षा 7 का अवलोकन किया। इस कक्षा में सुबह 10 बजे से लेकर शाम 4 बजे तक कोई शिक्षक-शिक्षिका पढ़ाने के लिए नहीं आए।

कक्षा- 7 के बच्चों के स्तर का एक अनुमान इस घटना से लगाया जा सकता है कि अवलोकनकर्ता ने कक्षा- 7 के बच्चों से कक्षा से बाहर जाकर अपने मन से कोई एक चीज देखने तथा वापस आकर उसके बारे में कुछ वाक्य लिखकर वर्णन करने के लिए कहा। सभी बच्चे बाहर जाकर स्कूल के अहाते में चलने वाले दूसरे स्कूल की लड़कियों का नृत्य देखने लगे और वापस आकर- गाय का रंग सफेद होता है, गाय के दो सींग होते हैं, गाय दूध देती है। जैसी घिसी-पिटी बातें बताने लगे जबकि स्कूल के अहाते में व उसके आसपास गाय का नामो-निशान नहीं था।

ऐसा नहीं है कि इन बच्चों में प्रतिभा नहीं थी या ये अवलोकन नहीं कर सकते थे, क्योंकि इन्हीं बच्चों को जब दोबारा कक्षा से बाहर यह कहकर भेजा गया कि जो भी चीज देखो उसके बारे में कक्षा के बाकी बच्चों को बताना कि वह क्या है, कैसी दिखती है, उसके आस-पास क्या-क्या है आदि। तो उनमें से कुछ बच्चों ने आकर अपने शब्दों में वर्णन करने की कोशिश की। एक लड़के ने बाहर घास देखी और उसका वर्णन करते हुए बताया कि- वह घास देखकर आया है, घास बीच-बीच में कुछ सूखने लगी है, घास के एक तिनके पर एक चींटा बैठा हुआ है, घास के बीच में रास्ता बना हुआ है; आदि।

सरकार की तरफ से इस स्कूल में तीन कक्षाओं पर, जिनमें कुल नामांकन 202 था और अवलोकन के दिन उपस्थिति 129 थी, सिर्फ एक शिक्षिका नियुक्त थी। दूसरे शिक्षक तो अपनी भलमनसाहत में बच्चों को पढ़ाने आते थे। अतः अवलोकन के दिन यदि अपनी सहूलियत के कारण या किसी भी अन्य वजह से अगर दोनों शिक्षक-शिक्षिका कक्षा-7 में नहीं आना चुनते हैं तो इसके लिए उनके पास शिक्षक कम होना या इस तरह के अन्य कई वाजिब कारण हो सकते हैं क्योंकि वे दोनों ही कक्षा 6 व 8 में बारी-बारी से पूरे समय बने रहे।

एक ही स्कूल के ये कुछेक दृश्य हमारे आस-पास के किसी भी सरकारी स्कूल के दृश्य का प्रतिनिधित्व उसमें व्याप्त तमाम निराशाओं व उन निराशाओं के बीच मौजूद छोटी-सी आशा के साथ कर सकता है। स्कूल सरकार का है इसलिए यह माना जाता है कि किसी का भी नहीं है। 'गरीब की जोरू सबकी भाभी' वाली धारणा न सिर्फ स्कूल बल्कि हर सरकारी प्रतिष्ठान या संस्थान के बारे में आज हमारे समाज के मन में घर कर चुकी है जिसके तहत यह मान लिया जाता है कि सरकार के माल की जिम्मेदारी किसी की नहीं होती, उस पर तो सबका सिर्फ हाथ साफ करने का हक बनता है।

उत्तर प्रदेश में बहराइच जिले के कुण्डासर गांव का यह पूर्व माध्यमिक विद्यालय यानी 'अपर प्राइमरी स्कूल' शिक्षकों के अकाल का मारा है, बावजूद इसके कि इसके परिसर में ही एन.पी.आर.सी. (न्याय पंचायत रिसोर्स सेन्टर) का दफ्तर है। एन.पी.आर.सी. सर्व शिक्षा अभियान के तहत शिक्षकों की अकादमिक मदद के लिए पंचायत स्तर पर स्थापित केन्द्र है। यानी पूरे शिक्षा विभाग को इस बात की खबर है कि विद्यालय में शिक्षक नहीं के बराबर हैं। इन रिसोर्स सेन्टर को पंचायत स्तर और स्कूल में स्थापित करने के पीछे एक स्कूल को 'मॉडल स्कूल' बनाने की मंशा भी शामिल है। लेकिन यह सेन्टर अन्य स्कूलों की कैसी मदद करेगा। यह इसकी हालत से समझा जा सकता है। क्योंकि हम जानते हैं 209 बच्चों के बीच एक शिक्षक का होना न होना कोई मायने नहीं रखता।

समाज में पड़ोस के सरकारी स्कूल में शिक्षक होना जहां महिलाओं के लिए ऐसी सुविधाजनक स्थिति मान ली गई है जिसमें बड़ी सहूलियत के साथ चौका-बर्तन करते हुए, अपने बच्चे पालते हुए सरकारी तनख्वा पाने का मजा लिया जा सकता है। वहीं पुरुषों के लिए वह एक ऐसी सीधी गाय की तरह है जिसे बिना बछिया छोड़े दुहा जा सकता है। एक ऐसी सुविधाजनक नौकरी जिसे बिना किसी कष्ट के निबटाया जा सकता है। इससे किसी का कोई सरोकार नहीं कि उसका खामियाजा वे बच्चे भुगत रहे होते हैं जिनकी शिक्षा की जिम्मेदारी उस स्कूल पर होती है। वैसे भी अब सरकारी विद्यालयों में पिछड़े या वंचित तबके के बच्चे ही बचे हैं और उनके प्रति सरोकार न तो हमारी आर्थिक नीतियों में है और न ही शिक्षा नीति में है। इसकी स्वीकृति पूरे शिक्षा तंत्र में- ''अरे फीमेल टीचर है, कुछ लेट हो गई होगी, घर में कुछ काम आ गया होगा। मारसाब पर बहुत जिम्मदारी है, अकेले ही हैं काम करने वाले परिवार में, भई परिवार को भी तो देखना है नौकरी के साथ-साथ।'' जैसे जुमले सुनते हुए महसूस होती है।

सरकारी स्कूलों के बारे में यह एक ऐसा दृश्य है जो किसी भी संवेदनशील व्यक्ति को घोर निराशा में धकेल सकता है, लेकिन यह दुनिया एकरूप भी तो नहीं है। इसी निराशा के बावजूद एक बहुत अलग तरह की बात देखने को मिली जिसने एक उम्मीद जगाई, रेगिस्तान में किसी पेड़ की तरह और वह बात थी इस स्कूल में इन्द्रराज सिंह नाम के एक सेवानिवृत्त शिक्षक का बिना किसी स्वार्थ के बच्चों को रोजाना नियमित शिक्षक की तरह पढ़ाने आना। इनकी उम्र लगभग 65-66 वर्ष थी। झकाझक सफेद धोती-कुर्ता पहनते थे, बाल सन की तरह पूरे सफेद हो चुके थे। उम्र के बावजूद कंचे जैसी मांजरी आंखों में व चेहरे पर एक चमक थी और वे स्कूल तक साइकिल पर चलाकर आते थे। इनसे बातचीत में पता चला कि पांच-छह साल पहले सेवानिवृत्त हो चुके हैं और पास ही के गांव के हैं। वे इसी स्कूल से सेवानिवृत्त हुए थे। सेवानिवृत्ति के बाद भी वे बच्चों की शिक्षा को निस्वार्थ अपना समय देते हैं। पूरे समय नियमित शिक्षक की तरह स्कूल में रहते हैं। इनकी विज्ञान व गणित पढ़ाने में रुचि है। बातचीत में उन्होंने बताया कि रोजाना मुझे तैयारी करके आना पड़ती है। ''पढ़ाई कठिन हो गई है, गाइड वगैरह देखकर पढ़ाना अच्छा नहीं लगता इसलिए हर रोज घर पर एक-आध घंटा तैयारी करके आते हैं।'' शिक्षा के बारे में उनके विचार थोड़े पुराने हैं लेकिन कर्मठता और कर्तव्यबोध जबरदस्त है। इनसे मिलकर लगा कि जब लोग अपने काम से बचने की कोशिश करते हैं ऐसे में उनमें वह कौनसा ऊर्जा व प्रेरणा का स्रोत है जो मारसाब को घर नहीं बैठने देता!

ये शायद हमारे हिन्दुस्तान की वह पीढ़ी रही है जो आजादी से कुछ पूर्व या उसकी अलस भोर में पैदा हुई जिसने हिन्दुस्तानी समाज में नेहरू युगीन आदर्शवाद देखा, उसे अपने युवाकाल में अपने जीवन में उतारने की कोशिश की। इन्हीं में से कुछ लोग आज भी आपको अपने कुछ आदर्शों के साथ जीते हुए मिल जाएंगे। नब्बे के दशक के बाद शुरू हुई उदारता की बाढ़ में यह आदर्शवाद न जाने कहां बह गया! आज जबकि अमेरिका जैसे राष्ट्र तक को आदर्शों की जरूरत महसूस हो रही है हमने न जाने किस अंधे कुंए का रास्ता पकड़ लिया है।

इन शिक्षक ने बताया कि आज से कुछ वर्षों पहले तक यह स्कूल जिले के सर्वोत्तम स्कूलों में गिना जाता था। यहां के उस समय के प्राचार्य, जो इस स्कूल के संस्थापक भी थे बहुत अच्छे थे। एकदम अनुशासन प्रिय। ''अब तो वे नहीं रहे। उनके जमाने में यहां दो आवाजों के सिवा कोई तीसरी आवाज नहीं होती थी। एक आवाज पढ़ा रहे अध्यापक की और दूसरी पूछने वाले विद्यार्थी की। उन्हीं ने यह स्कूल बनाया था। उनकी आवाज जैसे आज भी यहां सुनाई देती है।'' इनकी बातचीत से लगा सचमुच उन्हें इस स्कूल और इस जगह से प्यार है। हमारे देश के जीवन में वह समय कब आएगा जब अपने काम और कार्यस्थल से इस तरह प्यार करने वाले लोगों का एक बड़ा समूह हमारे देश के पास होगा!

इसी स्कूल से सटा हुआ एक और स्कूल है। वहां के हालात ये हैं कि स्कूल के इंचार्ज शिक्षक कभी-कभार ही स्कूल आते हैं। क्योंकि वे शिक्षक संघ के नेता हैं और उनका कोई क्या बिगाड़ लेगा, यह वे अच्छी तरह जानते हैं। अपने इसी ज्ञान की वजह से वे आज भी नदारद थे।

ऐसी निराशाजनक स्थितियों में इन बुजुर्ग शिक्षक ने एक दीया है जो अंधेरे में जला रखा है। मुझे नहीं पता इसका कोई असर इस व्यापक परिदृश्य पर पड़ेगा भी या नहीं। लेकिन ये उन बच्चों के मन में शायद यह भाव जरूर जगा पाएंगे कि दुनिया एक जैसी नहीं है। एक ओर उन शिक्षकों का हुजूम है जो केवल मजबूरी में शिक्षक बने। उनकी कोई इच्छा नहीं थी शिक्षक होने की। लेकिन उन्हें यह भी नहीं पता कि उनकी क्या होने की इच्छा थी। वे हमारे समाज की उस भीड़ का प्रतिनिधित्व करते हैं जिसे खुद नहीं पता कि उसने अपने लिए क्या रास्ते चुने हैं। यह एक तरह से हमारी शिक्षा व्यवस्था की असफलता है। ऐसे शिक्षक कभी समय पर स्कूल नहीं पहुंचते, कभी पढ़ाते नहीं, बच्चों से प्यार नहीं करते। ऐसे हुजूम के बरक्स कोई एकाध ऐसा शिक्षक सब कुछ सूख चुके में सूखने से बची रह गई घास की जड़ों की तरह उम्मीद जगाता है। आधुनिक शिक्षाशास्त्रीय दृष्टि से तमाम खामियों के बावजूद मुझे इन शिक्षक के चेहरे पर एक ऐसी आभा नजर आई जो श्रम और ईमानदारी से अर्जित होती है। ◆